

## धर्मशास्त्र में व्रतविधान

डॉ. सीमा चौधरी

व्याख्याता, संस्कृत

बा.भ.दा. राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चिमनपुरा, शाहपुरा, जयपुर (राजस्थान)



### शोध सारांश

व्रताधिकार सभी वर्णों के स्त्री पुरुषों के लिये बताया गया है क्योंकि पाप एवं प्रायश्चित का सम्बन्ध सभी प्राणियों से जुड़ा हुआ है। प्रारब्ध कर्मों के फलों के विनाश हेतु किया जाने वाला यह एक विशेष कर्म है जो मुख्य रूप से काम्य श्रेणी में आता है और कामना का सम्बन्ध मन से होता है अतः व्रत स्वयं द्वारा ही किया जाना चाहिए। लेकिन यदि व्यक्ति व्रत करने में असमर्थ हो जाये तो उसका प्रतिनिधि उस विधान को पूर्ण कर सकता है। यद्यपि तीन प्रकार के व्रतों में मानस एवं वाचिक व्रतों को श्रेष्ठ बताया है फिर भी स्थूलबुद्धि जनसामान्य के लिए कायिक व्रतों को अधिक महत्त्व मिला। व्रत में निषिद्ध भोज्य एवं पयोदि का उल्लेख भी कुछ धर्मशास्त्रकारों ने किया है। निर्णय सिन्धु में तो प्रतिपदादि के क्रम से प्रत्येक तिथि के निषिद्ध पदार्थों का उल्लेख किया गया है। व्रतोपवास का सम्बन्ध मुख्य रूप से पूजाकर्म से है। धर्मशास्त्रकारों ने पूर्वाह्न में ही देवपूजा का विधान किया है। चन्द्रोदय के व्रत में चन्द्रोदय के समय ही पूजा का विधान है। वारव्रतों में ग्रह पूजा हेतु रवि, गुरु, मंगल, बुध को प्रातः पूजा तथा शुक्र शनि एवं चन्द्र को सायं को पूजा का विधान है। तिथि व्रतों में सामान्यतया समतिथि का व्रत पूर्वतिथि से विद्रा होने की तिथि में मान्य हो जाता है एवं विषम तिथि का व्रत परतिथि से विद्रा होने पर ही मान्य होता है।

धर्मशास्त्र में प्रायश्चित के निमित्त व्रतों का विधान उपलब्ध होता है। चूँकि पाप एवं प्रायश्चित का सम्बन्ध सभी प्राणियों से जुड़ा हुआ है अतः व्रताधिकार निष्पक्ष रूप से सभी वर्णों के स्त्री पुरुषों के लिए प्रदान किया गया है। इस विषय में हेमाद्रि में देवल का मत उपलब्ध होता है-

‘व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा।

वर्णाः सर्वेऽपि मुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः॥<sup>1</sup>

यद्यपि पुराणों में स्त्रियों के लिए विशेषकर व्रतों का विधान किया गया है किन्तु धर्मसूत्रकारों ने स्त्रियों के लिए व्रतों का निषेध किया है। इनमें धर्मसूत्रकार विष्णु ने लिखा है-

‘नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।

पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गं महीयते॥<sup>2</sup>

अर्थात् स्त्री के लिए पृथक् से यज्ञ व्रत या उपवास का विधान नहीं है। पति की शुश्रूषा ही उसके लिए सबसे बड़ा व्रत है तथा उससे ही वह स्वर्ग में सम्मान का अधिकार प्राप्त करती है। यहाँ ‘पृथक्’ शब्द से यह लक्षित होता है कि यज्ञ व्रत उपवास

दान आदि धार्मिक कार्यों में स्त्री एवं पुरुष अर्थात् पति-पत्नी का युगपद् अधिकार बनता है, पृथक् नहीं। यह भी अर्थ लिया जा सकता है कि पति शुश्रूषा से पृथक् व्रतादि कार्यों में स्त्री का कोई अधिकार नहीं बनता।

सम्भवतः विष्णु का तात्पर्य दूसरे अर्थ से ही है जैसा कि उसने इसी कथन के पश्चात् अपने मत को स्पष्ट किया है-

‘पत्यौ जीवति या योषिदुपवासं व्रतमाचरेत्।

आयुः सा हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति।<sup>3</sup>

अर्थात् पति के जीवित रहते जो स्त्री उपवास या व्रत का आचरण करती है वह पति की आयु का हरण करती है तथा नरक को प्राप्त करती है।

विष्णु के इस मत का समर्थन मनु ने प्रकारान्तर से किया है जबकि अंगिरा ने स्पष्ट रूप से। धर्मसूत्रकारों के इस विधान के विरुद्ध स्त्रियों के लिए व्रतों का विधान कतिपय पुराणों एवं मध्यकालीन धर्मनिबन्धकारों ने किया है, किन्तु वे सूत्रकारों के विरोध से बचने के लिए यह व्यवस्था देते हैं कि स्त्री कुमार्यावस्था

में व्रत के लिए पिता से, विवाहित होने पर पति से तथा विधवा हो तो पुत्र से अनुमति लेवे। यद्यपि इस विधान का कोई औचित्य नहीं है तथापि धर्मशास्त्रकारों ने परम्परागत रूप से इसे अपनाया तथा पुराणकारों ने भी इसका समर्थन किया। लिंगपुराण में उल्लेख है कि पति की आज्ञा से ही नारी जल, दान, तप आदि कर सकती है।<sup>4</sup>

पौराणिक काल तक यह धारणा चलती रही तथा पुराणोत्तर काल में व्रतों के लिए सभी का स्वतंत्र अधिकार धर्मशास्त्रियों द्वारा मान्य कर दिया गया। इस विषय में व्रतार्क का मत उद्धृत करते हुए देवीपुराण में लिखा है।-

“क्वचिन्म्लेच्छानामप्यधिकारो हेमाद्रौ देवीपुराणे।

यथा स्नातैः प्रमादितैर्ऋषिः ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः।”

वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तम्लैच्छैरन्यैश्च मानवैः॥

स्त्रीभिश्च कुरूशार्दूल तद्विधानमिदं श्रुणु॥<sup>5</sup>

यहाँ श्रद्धालु होना एवं भक्तिमान होना ही व्रत के लिए अर्हता स्वीकार की गयी है तथा वर्णभेद एवं लिंगभेद को एतदर्थ अविचारणीय समझा गया है। सम्भवतः तत्कालीन धर्मशास्त्रकारों को यह व्यवस्था युगानुकूल रही हो। तथापि यह कहना उचित होगा कि धर्मशास्त्रकारों ने भी व्रतोपवासादिविधान को कर्म की श्रेणी में ही स्वीकार किया है। प्रारब्ध कर्मों के फलों के विनाश हेतु किया जाने वाला यह एक विशेष कर्म है जो मुख्य रूप से काम्य श्रेणी में आता है, क्योंकि इसके पीछे कामना निहित है। चूँकि कामना का सम्बन्ध मन से होता है, अतः व्रत स्वयं द्वारा ही किया जाना भी उचित माना गया। इसी कारण त्रिकाण्डमण्डन इत्यादि ग्रन्थों में काम्यकर्म के कारण व्रतादि के संदर्भ में प्रतिनिधि की व्यवस्था का निषेध किया गया है।<sup>6</sup> किन्तु धीरे-धीरे यह मन्तव्य भी अग्रह हो गया और पैठानसि आदि धर्मशास्त्रकारों ने यह व्यवस्था प्रदान की कि व्रतारम्भ के पश्चात् व्रती पुरुष कदाचित् व्रत करने में असमर्थ हो जाये तो उसके स्थान पर उसका प्रतिनिधि उस विधान को पूर्ण कर सकता है। सम्भवतः यह व्यवस्था संकल्पित व्रत विधान के संदर्भ में की गयी होगी जिसको आगे चलकर निर्णयसिन्धु एवं काल निर्णय में भी पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ।<sup>7</sup>

इस प्रकार एक दीर्घ अवधि के पश्चात् व्रतपरम्परा को जनमानस में उतरने का अवसर मिला। वैदिक काल में व्रतों के तीन स्वरूप थे कायिक, मानसिक एवं वाचिक किन्तु पौराणिक काल के पश्चात् कायिक व्रत ही व्रतों के पर्याय बनकर रह गये। पद्मपुराण एवं वाराह पुराण में तीनों प्रकार के व्रतों को समान महत्त्व दिया गया है।

‘अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता।

एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये॥

एकमुक्तं तथा नक्तमुपवासअयाचितम्।

इत्येवं कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर॥’

वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम्।

अपैशुन्यमिदं राजन् वार्चिक व्रतमुच्यते॥<sup>8</sup>

यद्यपि तीनों प्रकार के व्रतों में मानस एवं वाचिक व्रतों को कायिक व्रत की अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाया गया है, तथापि स्थूलबुद्धि जनसामान्य के लिए कायिक व्रतों को ही अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। कायिक व्रतों का विधान कालविशेष से सम्बद्ध रहा। अतः वारव्रत तिथिव्रत, संक्रान्तिव्रत, ऋतुव्रत अथवा संवत्सरव्रत प्रचलित हुए। चूँकि व्रतों को काल से सम्बद्ध किया गया और काल का प्रभाव ही कर्म पर भी स्वीकार किया गया। अतः व्रतारम्भ काल को भी महत्त्व मिला। कालान्तर में व्रतारम्भ हेतु भी काल निर्णय की आवश्यकता हुई, अतः धर्मशास्त्रकारों ने व्रतारंभ के लिए प्रशस्त एवं निषिद्ध कालों का प्रतिपादन किया, ताकि व्रतविधान सांगोपांग पूर्ण हो सके। मदनरत्न में उल्लेख है।

‘अस्तंगते गुरौ शुक्रे मलमासे तथैव च।

बालवृद्धत्व सम्प्राप्तो अथवा गुरुशुक्रयोः॥

व्रतारम्भं नैव कुर्यान्नोद्यापनभारयेत॥<sup>9</sup>

अर्थात् गुरुशुक्रस्त की स्थिति में, मलमास में तथा गुरुशुक्र के बाल्यत्व एवं वृद्धत्व दोष की स्थिति में व्रतारम्भ नहीं करना चाहिए। गुरु चूँकि शरीर का अधिकारी है। तथा शुक्र जीवन का अतः गुरु शुक्र जब श्रेष्ठ है उस समय ही व्रतारंभ फलदायी होगा ऐसी धारणा तत्कालीन धर्मशास्त्रकारों के मन में विद्यमान थी। इसी प्रकार मलमास को अपशिष्ट काल माना गया है अतः व्रतारम्भ में उसका भी निषेध किया है। यहाँ विशेषकर क्षयमास को ही मलमास कहा है क्योंकि अधिक मास में तो व्रतादि का विधान पुराणों में अनेकत्र कर दिया गया है। इसी प्रकार सिंह राशि में गुरु शुक्र के होने पर भी व्रतोपवासादि धार्मिक कृत्यों का निषेध प्रतिपादित किया गया है। भौगोलिक स्थिति एवं उस पर पड़ने वाले ग्रहगति प्रभावों को ध्यान में रखकर व्रतराज में लिखा गया है कि नर्मदा के उत्तरवर्ती भूभाग में विशेषकर सिंह राशिस्थ गुरु एवं शुक्र की स्थिति में धार्मिक कृत्य नहीं करने चाहिए।

वार व्रतों के विषय में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है, किन्तु तिथिव्रतों एवं पर्वव्रतों के संदर्भ में तिथि निर्णय आवश्यक माना गया है। तिथि निर्णय के संदर्भ में स्कन्दपुराण ने सर्वो दयकालीन तिथि को सामान्य रूप से मान्य किया है-

‘प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादादोदयाद् रवेः।

संपूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः॥’<sup>10</sup>

तिथि तत्त्व में गर्गाचार्य ने तिथिवारादि की फलवत्ता को गौण माना है। उनके मत में प्रधान फल व्रतोपवास का ही होता है तिथि आदि तो उसमें सहकारी होते हैं। अतः उनका यथासंभव विचार कर लेना उत्तम है-

‘तिथिनक्षत्र वारादि साधनं पुण्यपापयोः।

प्रधानगुणभावेन स्वातन्त्र्येण न तो क्षमाः॥’<sup>11</sup>

व्रत में निषिद्ध भोज्यपेयादि का उल्लेख भी कुछ धर्मशास्त्रकारों ने किया है, क्योंकि भोजन का ही प्रभाव मानव के मन पर पड़ता है अतः ऐसा भोजन निषिद्ध है जिससे व्रती पुरुष के मन पर विपरीत प्रभाव पड़े। इस विषय में निर्णय सिन्धु में प्रतिपदादि के क्रम से प्रत्येक तिथि के निषिद्ध पदार्थों का उल्लेख किया गया है-

‘कूष्माण्डं बृहती क्षारं मूलकं पनसं फलम्।

धात्री शिरः कपालान्त्रं नखचर्म तिलानि च॥

क्षुरकर्मांगनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत्॥’<sup>12</sup>

उक्त निर्देशानुसार त्याज्य पदार्थों का विवरण निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है-

तिथि	त्याज्य पदार्थ एवं कर्म
प्रतिपदा	कूष्माण्ड (कहू)
द्वितीया	बृहती (लौकी)
तृतीया	क्षार (लवण)
चतुर्थी	मूलकम् (मूली या कन्दमूल)
पंचमी	पनस
षष्ठी	फला (आम्रादि)
सप्तमी	धात्री (ऑवला)
अष्टमी	शिरः (नारियल)
नवमी	कपाल (अलाबु)
दशमी	आन्त्र (पटोलक)
एकादशी	नख (शिमबी)
द्वादशी	चर्म (मसूर)
त्रयोदशी	तिल
चतुर्दशी	क्षुरकर्म (केशकर्त्तन)
पूर्णिमा, अमावस्या	अंगना सेवा (सम्भोगादि कर्म)

व्रतोपवास का सम्बन्ध मुख्यतः पूजाकर्म (देवार्चन) से है। श्रुति निर्देशानुसार धर्मशास्त्रकारों ने पूर्वाह्न में ही देवपूजा का विधान किया है। धर्मसिन्धु में इस विषय में शतपथ ब्राह्मण की निम्नांकित उक्ति उद्धृत की गयी है।

‘पूर्वाह्नोवैदेवानाम्। मध्यन्दिनो मनुष्याणाम्। अपराह्नः पितृणाम्।’<sup>13</sup>

मन्वादि ने भी मनुष्यों के दैनन्दिन कार्यों में देवपूजा का विधान प्रातः ही प्रशस्त माना है, तथापि स्मृतिकारों ने व्रतविशेष के लिए जहाँ काल निर्देश विशिष्ट हो वहाँ उसी काल में देव पूजा को मान्य किया है जैसे चन्द्रोदय व्रत में चन्द्रोदय के समय ही पूजा का विधान है। वहाँ प्रातः काल चन्द्रदर्शना भाव को पूजन निषिद्ध है। इसी प्रकार वारव्रतों में ग्रहपूजा हेतु रवि, गुरु, मंगल, बुध को प्रातः पूजा तथा शुक्र शनि एवं चन्द्र को सायं पूजा का विधान है। तिथिव्रतों में सामान्यतया समतिथि का व्रत पूर्वतिथि से विद्धा होने की तिथि में मान्य हो जाता है जैसे चतुर्थी का व्रत तृतीया से विद्धा होने पर भी मान लिया जाता है क्योंकि पञ्चमी से विद्धा होने पर चतुर्थी में चन्द्रोदय की संभावना न्यूनातिन्यून रहती है। इसी प्रकार विषम तिथि का व्रत परतिथि से विद्धा होने पर ही मान्य होता है जैसे एकादशी का व्रत द्वादशी से विद्धा हो उस दिन ही मान्य होगा क्योंकि दशमी से विद्धा होने पर उपवास का पारण एकादशी में ही हो जाने से व्रतभंग होगा। अतः तिथ्यादि निर्णय के सामान्य नियमों का भी व्रतोपवासादि के संदर्भ में ध्यान रखा जाना उचित है।

#### संदर्भ सूची

1. हेमाद्रि (व्रतखण्ड)/ पृ. 325
2. विष्णुधर्मसूत्र 25/15
3. विष्णुधर्मसूत्र - 25/16
4. लिंग पुराण - 84/16
5. देवी पुराण (व्रतार्क) पृ. 789
6. त्रिकाण्डमण्डल (2/213, 8)
7. निर्णयसिन्धु (पृ. 29) कालनिर्णय (पृ. 262-263)
8. पद्मपुराण (4/84/42-44), वाराह पुराण (37/4-6)
9. मदनरत्न - पृ. 423
10. स्कन्दपुराण - 4/133/पृ. 629
11. तिथि तत्त्व / पृ. 4
12. निर्णयसिन्धु/पृ. 32
13. शतपथ ब्राह्मण - 2/4/2/8